© 2018 IJSRST | Volume 4 | Issue 2 | Print ISSN: 2395-6011 | Online ISSN: 2395-602X
Themed Section: Scienceand Technology

बौद्ध शिक्षा केन्द्र के रूप में विक्रमशिला विश्वविद्यालय

डॉ उमेश तिवारी
प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भारत में शिक्षा का इतिहास हजारों वर्ष पुराना है। अपनी बहुआयामी उत्कृष्ट शिक्षा के कारण ही भारत लम्बे समय तक जगत्गुरु बना हुआ था जहाँ देश–विदेश के लोग शिक्षा प्राप्ति के लिए आते थे। भारतीय शिक्षा की विरासत गौरवशाली होते हुए भी आज अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित करने में असमर्थ है, अतः शोध पत्र लिखने का उद्देश्य अतीत के शैक्षणिक गौरव को प्रस्तुत कर लोगों में जागरूकता उत्पन्न की जाये।

विश्व में एशिया खण्ड ही एक ऐसा स्थल है जहाँ अनेक धर्मों और सम्प्रदायों का जन्म हुआ। पारसी, यहूदी, ताओ, कन्फ्यूशियस, सांख्य, योग, बौद्ध, जैन जैसे धर्म इसी पावन एवं उर्वर भूमि में जन्में और इनकी वैचारिक उद्भावनाएँ ही नवीन चेतना के रूप में प्रतिष्ठित हुई। इनमें से भारतवर्ष में प्रादुर्भूत बौद्ध धर्म व्यापक, मानवीयता, करूणा और नैतिकता का अधिक पोषक माना गया और इसका प्रसार शिष्टता एवं आदर के साथ पूरे एशिया खण्ड में आरम्भ से ही होने लगा।

बौद्ध धर्म के विकसित होने पर ही संगठित शिक्षण संस्थाओं के निर्माण की ओर ध्यान दिया गया। संगठित शिक्षण संस्थाओं का जन्म पहले बौद्ध विहारों के रूप में हुआ था। इन विहारों में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियाँ रहते थे। कालान्तर में यह बौद्ध विहार विद्याध्ययन के केन्द्र के रूप में विकसित हुआ और अन्ततः इनकी परिणति विश्वविद्यालय के रूप में हुईं। प्राचीन काल में नालन्दा, विक्रमशिला, वल्लभी, ओदन्तपुरी आदि विश्व प्रसिद्ध बौद्ध विश्वविद्यालय थे।[1] भारत के सांस्कृतिक इतिहास में विक्रमशिला एक अविस्मरणीय पृष्ठ है, जिसे हम बार–बार दोहराना चाहते है। शिक्षा, ज्ञान और संस्कृति से जुड़ा विख्यात विक्रमशिला विश्वविद्यालय हमें भारतीय इतिहास के उन खोये हुए पृष्ठों की ओर ले जाता है जो कभी हमारे गौरव निधि थे।

तिब्बती इतिहासकार तारानाथ, मिन्हाज–उस–सिराज की कृति तबकात–ए–नासिरी, आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट तथा अन्य द्वितीयक स्रोतों के विवरणों से ज्ञात होता है कि विक्रमशिला विश्वविद्यालय भारत के प्राचीन बौद्ध शिक्षा देने वाले विशविद्यालयों में एक था। वज्रयान सिद्धानों के अध्ययन एवं शिक्षा देने के कारण इसने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। भारत ही नहीं प्रत्युत एशिया के विभिन्न देशों से यहाँ ज्ञान पिपासु छात्र अध्ययन के लिए आते थे।

तारानाथ[2] के अनुसार आठवीं शताब्दी में पालवंश के राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला विहार की स्थापना की।[3] इतिहासकारों में मतभेद है कि विक्रमशिला वास्तव में कहाँ पर स्थित है, तिब्बती स्रोतों के अनुसार ये

पहाड़ी चट्टान के ऊपर गंगा नदी के तट पर मगध (बिहार) में बसा हुआ है। अलेक्जेण्डर कनिंघम[4] जिन्होंने प्राचीन भारत में बहुत से पुरास्थलों की खोज की है उन्होंने कहा कि ये एक गाँव सिलाव के पास है जो बड़ागाँव के समीप है। बनर्जी ने चिन्हित किया कि हुसालगंज से तीन मील दक्षिण पूर्व में क्योर[5] स्थित है। लेकिन दोनों स्थलों के समीप गंगा के न होने से उसके प्रमाणीकरण में शंका उत्पन्न होती है। राजेन्द्रलाल मित्रा[6] और सतीश चन्द्र विद्याभूषण[7] ने पहचान की कि ये भागलपुर में सुल्तानगंज में स्थित है इसमें सन्देह कम है क्योंकि सुल्तानगंज गंगा नदी के बाँये तट पर स्थित है। नन्दलाल डे के अनुसार विक्रमशिला भागलपुर से 24 मील पूर्व पत्थरघाट में स्थित है जो कि सही प्रतीत होती है।[8] पत्थरघाट कहलगाँव की सीमा में आता है जो कि गंगा नदी के बाँयें तट पर स्थित है, यहाँ बहुत से बौद्ध पत्थर मूर्तियाँ, टेराकोटा की तांत्रिक यक्ष यक्षणियाँ पाई गई है। फ्रैंकलिन का यह मानना है कि पत्थर घाट का नाम संस्कृत के सिला संग्रमा से बना है। एन0पी0 चक्रवर्ती[9] ने विहार का क्षेत्र वटेश्वर और पत्थरघाट के समीप बताया है। हैमिल्टन[10] ने एंटीचक[11] गाँव में मिले अवशेषों का ऐतिहासिक दृष्टि से निरीक्षण किया। ओल्डमैन पहले व्यक्ति है जिन्होंने 1930 में एन्टीचक में मिले अवशेषों को विक्रमशिला विहार से जोड़कर देखा।

विक्रमशिला अपने समय का सर्वश्रेष्ठ विहार था। विक्रमशिला विश्वविद्यालय पूर्ण नियोजित व आवासीय था। जिसमें आजकल के संस्थान के समान छः कालेज या संस्थान थे जो एक केन्द्रीय हाल में छः फाटकों से सम्बद्ध थे। इस हाल को विज्ञान–गृह कहते थे। सभी में द्वार पण्डित थे। छः फाटक छः संस्थानो का नेतृत्व करते थे, इन संस्थानों में व्याख्यान के लिए महत्वपूर्ण हाल होते थे। ये सारे संस्थान मजबूत चहारदीवारी से घिरे थे।[12] विक्रमशिला विश्वविद्यालय के मध्य में एक मन्दिर था जिसमें महाबोधि की मूर्ति थी। अन्य मन्दिरों की संख्या 108 थी।[13] विश्वविद्यालय में नालन्दा की भाँति बहुत सम्पन्न पुस्तकालय भी था। वहाँ पर व्याकरण, तर्कशास्त्र, दर्शन, न्याय, कला, आयुर्वेद और साहित्य की अलभ्य पुस्तकों का संग्रह था। यहाँ पर प्रारम्भिक बौद्ध दर्शन के साथ–साथ तन्त्रवाद पर भारी संख्या में संग्रह उपलब्ध था।[14] 400 वर्षों तक शिक्षा केन्द्र के रूप में इसने अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की थी। तिब्बती विद्वानों के लिए एक अतिथि गृह था जहाँ तिब्बत से ज्ञान पिपासू भारतीय पण्डितों के चरणों में बैठकर अध्ययन करने आते थे।[15] चहारदीवारी के बाहर मुख्य द्वार पर एक 'धर्मस्व' था, जिसमें देर से आने वाले अतिथि और पथिक निवास करते थे।

बंगाल के राजा धर्मपाल ने विक्रमशिला को संरक्षण प्रदान किया और 108 उच्च अध्यापकों की नियुक्ति की और सैकड़ों सहायक अध्यापक थे कुछ लोगों का मानना है कि 114 की नियुक्ति की।[16] छात्रों के लिए आवास और भोजन की व्यवस्था विश्वविद्यालय की ओर से की जाती थी। ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि बारहवीं शताब्दी तक विक्रमशिला में विद्यार्थियों की संख्या 3000 तक हो चुकी थी।[17] विश्वविद्यालय का प्रबन्धन एक बोर्ड द्वारा होता था। नालन्दा और विक्रमशिला दोनों का प्रबन्धन एक ही बोर्ड हाथों में था, जो कि पाल राजाओं द्वारा गठित किया गया था। इस बोर्ड तथा समिति के सदस्य द्वारपण्डित होते थे। इसका अध्यक्ष

महास्थविर कहा जाता था जो आजकल के कुलपति के समकक्ष था। भिक्षु प्रोफेसर बहुत ही सादा जीवन व्यतीत करते थे।[18]

यहाँ शिक्षण का माध्यम संस्कृत भाषा थी। पाठ्य विषय मुख्यतः व्याकरण, तर्कशास्त्र, तन्त्रशास्त्र, वेद, उपनिषद् तथा दर्शनशास्त्र थे। विक्रमशिला को उत्तर भारत में तांत्रिक बौद्धधर्म का गढ़ माना जाता था। यहाँ के आचार्यों में अनेक उच्च कोटि के तांत्रिक थे। महायान शाखा के माध्यमिक तथा योगाचार सिद्धान्तों के विभाग ख्याति प्राप्त थे। विक्रमशिला का पाठ्यक्रम जितना व्यवस्थित था, उतना अन्य किसी भारतीय विद्यापीठ का नहीं था। यहाँ के स्नातकों को समावर्त्तन के अवसर पर बंगाल के शासकों की ओर से उपाधि या प्रमाण–पत्र दिये जाते थे। तिब्बती स्रोत हमें जानकारी देते हैं कि जेतारि और रत्नवज्र ने राजा महिपाल और कनक के हाथों से डिग्री प्राप्त की थी।[19] स्थानीय विशिष्ट विद्वानों की स्मृति को सर्वदा ताजी बनाये रखने के लिए विहार की कक्ष की दीवारों पर उनके चित्र बना दिये जाते थे। नागार्जुन और अतिश को वह सम्मान प्राप्त हुआ था।[20]

नालन्दा की भाँति विक्रमशिला के प्रवेश द्वारा पर ही द्वारपण्डित होते थे जो ज्ञान पिपासुओं के प्रवेश की पात्रता की परीक्षा लेकर ही अन्दर प्रवेश करने देते थे। विश्वविद्यालय में कुछ दिन अध्यापन करने के बाद जब शिक्षक अपनी योग्यता सिद्ध कर दते थे तो किसी विद्वान शिक्षक को द्वारपंडित बनाया जाता था। तिब्बती परम्परा के अनुसार विक्रमशिला में द्वारपण्डित को नो–स्रम कहा जाता था। कनक या चणक का शासन काल ईसवी सन् 955–983 तक था, इस काल में विक्रमशिला में निम्न द्वारपंडित थे[21]– रत्नाकर शान्ति को पूर्वी द्वार पर द्वारपंडित नियुक्त किया गया, इन्होंने ओदन्तपुरी विश्वविद्यालय से शिक्षा ग्रहण की थी, बाद में ये विक्रमशिला आ गये और यहाँ पर अध्ययन किया। कुछ समय पश्चात् ये श्रीलंका चले गये और वहाँ पर उन्होंने बौद्ध धर्म की शिक्षा दी और प्रचार–प्रसार किया। इन्हें महाचार्य की उपाधि दी गई थी। वागीश्वरकीर्ति विक्रमशिला विश्वविद्यालय के पश्चिमी द्वार के द्वारपंडित थे, ये बनारस के मूल निवासी थे, ये तारादेवी के उपासक थे और संस्कृत में तन्त्रविद्या का प्रचार किया। नारोपा विक्रमशिला में कुछ समय शिक्षक थे। इसके पश्चात् इन्हें उत्तर द्वार पर द्वारपंडित नियुक्त किया गया। नारोपा शास्त्रार्थ में कुशल थे। प्रज्ञाकरमति विक्रमशिला विश्वविद्यालय के दक्षिण द्वार के द्वारपंडित थे। रत्नवज्र विक्रमशिला विश्वविद्यालय के प्रथम केन्द्रीय द्वार के द्वारपंडित नियुक्त हुए। इनका मूल निवास स्थान कश्मीर था। ये कश्मीर से विक्रमशिला आए और उच्च कोटि की विद्वता प्राप्त की। ज्ञानश्रीमित्र विक्रमशिला के द्वितीय केन्द्रीय द्वार के द्वारपंडित थे। महापंडित ज्ञानश्रीमित्र बंगाल के निवासी थे, इन्होंने संस्कृत के अनेकों ग्रन्थों की रचना की थी। ये तीन तर्कशास्त्र की पुस्तकों के भी रचयिता थे।

बौद्ध धर्म की महायान शाखा के प्रचार–प्रसार का कार्य नालन्दा, विक्रमशिला और ओदन्पुरी विश्वविद्यालय के छात्र एवं अध्यापक कड़ी लगन से कर रहे थे। तिब्बती स्रोतों से हमें विक्रमशिला के शिक्षा मनीषियों के विषय में जानकारी प्राप्त होती है।[22] नारोपा जो द्वारपंडित भी थे। नालन्दा में नारोपा प्रसिद्ध तत्वज्ञानी और

प्रभावशाली आचार्य थे उन्होंने अपने शिष्य रत्नकार शान्ति को सिंघल में महायान की स्थापना के लिए भेजा था, जो कुछ समय तक विक्रमशिला के कुलपति थे। रत्नकार शान्ति की गिनती चौरासी सिद्धों में होती थी। दीपंकर श्रीज्ञान का जन्म सन् 980ई0 में हुआ था इनका मूल नाम चन्द्रगर्भा था। ये जेतारि के शिष्य थे। ओदंपुरी विश्वविद्यालय के शिक्षक आचार्य शीलरक्षित ने इनका नाम दीपंकर श्रीज्ञान रखा। इन्हें दीपंकर आतिश भी कहा जाता था। इनकी ख्याति 'गुच्छ ज्ञानवज्र' के नाम से भी थी क्योंकि ये तन्त्रशास्त्र के सिद्ध ज्ञाता थे।

बौद्ध धर्म के विकास में तिब्बत का महत्वपूर्ण स्थान है और तिब्बत में बौद्ध धर्म की नींव को मजबूत करने और इसे पुनर्स्थापित करने में विक्रमशिला के आचार्यों की भूमिका श्लाघनीय है–जिनमें श्रीज्ञान दीपंकर का स्थान विशिष्ट है। आचार्य दीपंकर श्रीज्ञान आतिश 1042ई0 में नेपाल होते हुए विक्रमशिला से तिब्बत गये। उनके साथ करीब तीन दर्जन विद्वान भी तिब्बत गये। तिब्बत जाकर आतिश ने तिब्बती बौद्ध धर्म में कई महत्वपूर्ण परिवर्तन किये। इस परिवर्तन और परिमार्जन के उपरान्त बौद्ध धर्म को तिब्बत के राष्ट्रीय धर्म के रूप में मान्यता मिली। उन्होंने अपने उपदेशों का आधार योगाचार परम्परा को बनाया, हीनयान और महायान के उपबन्धों पर समन्वित दृष्टिकोण बनाया। आतिश अपने साथ 'लामावाद' को भी तिब्बत ले गये जिसकी जड़े विक्रमशिला में विकसित तांत्रिक महायान बौद्ध धर्म में सन्निहित थी। अभयंकर गुप्त का नाम विक्रमशिला के प्रसिद्ध शिक्षकों में आता है। ये बंगाल के रहने वाले थे। राजा रामपाल के शासनकाल में ये विक्रमशिला में पढ़ाते थे। तन्त्र के ये अधिकारी विद्वान थे।

प्रजानकरामति विक्रमशिला विहार के चौकीदार थे इन्होंने कई पुस्तकें लिखी इनमें से दो तिब्बत में है। इन सबके अतिरिक्त वैरोचन रक्षित, तथागत रक्षित, जनाश्री, रत्नवज्र, वीर्यसिम्हा, रत्नाकीर्ति, शाक्यश्रीभद्र आदि विक्रमशिला के प्रमुख आचार्य एवं विद्वान थे। इस विश्विद्यालय के अन्तिम आचार्य थे शाक्यश्रीभद्र।

इस प्रकार विक्रमशिला विश्वविद्यालय के आचार्यों की विद्वता व ख्याति भारत की सीमा को पार कर तिब्बत, मध्य एशिया, चीन, मंगोलिया व जापान तक पहुँच गई थी। 1203ई0 में बख्तियार खिलजी के नेतृत्व में मुस्लिम आक्रमण कारियों ने इस विहार को नष्ट कर दिया।[23] यहाँ के हजारों छात्र और अध्यापकों का कत्ल कर दिया गया। शाक्यश्रीभद्र कुछ साथियों के साथ जान बचाकर किसी प्रकार तिब्बत भाग गए। इस प्रसिद्ध विहार का ऐसा दुःखद अन्त हुआ। अब इसके खण्डहर ही शेष हैं।

सन्दर्भ ग्रंथ सूची

1. मझिम निकाय, भाग–1, पृष्ठ 377.

2. तारानाथ ने अपना मूल कार्य तिब्बती भाषा में किया। वह 1575ई0 में पैदा हुए। इनकी कृति पहले रूसी भाषा में 1869ई0 में फिर जर्मन व जापानी भाषा में मुद्रित हुए। लामा चिमन्या (विश्वभारती, कलकत्ता) अलका चट्टोपाध्याय ने अंग्रेजी में अनुवाद किया, देवी प्रसार चट्टोपाध्याय ने इसका सम्पादन किया और 1970ई0 में

इन्स्टीट्यूट ऑफ एडवान्स स्टडीज, शिमला से ''तारानाथ हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म इन इण्डिया'' नाम शीर्षक से प्रकाशित हुई आरम्भिक विक्रमशिला के इतिहास पर इसमें प्रमाणिक अन्य पुस्तक नहीं मिलती।

3. जितेन्द्र कुमार वशिष्ट–*भारतीय शिक्षा का इतिहास,* दिल्ली, 2005, पृष्ठ संख्या 55.

4. आर्कियोलॉजिकल सर्वे रिपोर्ट, 1862, कनिंघम, वाल्यूम–8, पृष्ठ 75.

5. क्योरः विक्रमशिला का पुरास्थल है, जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी, 1929, वाल्यूम–15, पृष्ठ 269–76.

6. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी रिसर्चर्स, 1864, कलकत्ता, वाल्यूम–33, पृष्ठ 360–74.

7. जर्नल ऑफ एशियाटिक सोसाइटी ऑफ बंगाल, 1909.

8. पूर्ववत्.

9. आर0के0 चौधरी– द यूनिवर्सिटी ऑफ विक्रमशिला बिहार रिसर्च सोसाइटी, पटना, 1975, पृष्ठ संख्या 3.

10. हैमिल्टन– ऐज एकाउन्ट ऑफ दा डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर 1810–11, बिहार एण्ड उड़िसा रिसर्च सोसाइटी पटना, 1929; बी0एस0 वर्मा –फरदर एक्सकेवेशनस ऐट एन्टीचक, जर्नल ऑफ बिहार पुराविद परिषद् वाल्यूम–2, पृष्ठ 154–7, 1–97.

11. एन्टीचक गाँव (कहलगाँव रेलवे स्टेशन के समीप पत्थरघाट) भागलपुर जिले में स्थित है.

12. पी0एन0 बोस–*इण्डियन टीचर्स ऑफ बुद्धिस्ट मोनास्ट्रीज,* मद्रास, 1923, पृष्ठ 30.

13. मालती सारस्वत, नीता सिन्हा एवं मदन मोहन–*भारतीय शिक्षा का इतिहास,* इलाहाबाद, 2013, पृष्ठ 60.

14. पूर्ववत्.

15. एस0सी0 दास, *इण्डियन पाण्डित्स इन दा लैण्ड ऑफ स्नो,* कलकत्ता, 1893, पृष्ठ 58.

16. डी0जी0 ऐप्टे–*यूनीवर्सिटी इन एन्शियेन्ट इण्डिया, एजूकेशन एण्ड साइकोलॉजी एक्सटेन्शन* नं0 11, महाराजा सायाजीराव, यूनिवर्सिटी ऑफ बड़ोदा, पृष्ठ 47–48.

17. पूर्ववत्, पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ 127.

18. पी0एन बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ 35.

19. पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ 47–61.

20. जितेन्द्र कुमार वशिष्ट, पूर्ववत् पृष्ठ 56.

21. एस0सी0 विद्याभूषण–*हिस्ट्री ऑफ मेडिवल स्कूल ऑफ इण्डियन लॉजिक,* कलकत्ता, 1909, तारानाथ, हिस्ट्री ऑफ बुद्धिज्म, पृष्ठ 395.

22. पी0एन0 बोस, पूर्ववत्, पृष्ठ 32–105.

23. *रावर्टी ट्रान्सलेशन ऑफ तबकात–ए–नासिरी,* वाल्यूम–1, 1881, पृष्ठ 552.